मलयालम सिनेमा - अन्तर्राष्ट्रीय नक्शे पर

डॉ. टी. शशिधरन
पूर्व हिन्दी विभागध्यक्ष
कण्णूर विश्वविद्यालय,
कण्णूर, केरल

मलयालम सिनेमा को अन्तर्राष्ट्रीय नक्शे तक पहुंचाने का श्रेय तीन व्यक्तियों को दिया जा सकता है - अडूर गोपालकृष्णन, जी. अरविंदन और शाजी.एन.करुण।

अडूर गोपालकृष्णन

अडूर गोपालकृष्णन ने 1965 में पुणे के फिल्म और टी.वी. संस्थान से पटकथा और निर्देशन का डिप्लोमा प्राप्त किया था। पुणे से केरल आकर उन्होंने के.पी. कुमारन के साथ चित्रलेखा फिल्म सोसाइटी बनायी। अडूर की पहली फिल्म "स्वयंवरम' (1972) में बनी थी। "कोटियेट्टम" (1977), "एलिप्पत्तायम" (1982), "मुखामुखम' (1984), "अनंतरम' (1987), "मतिलुकल' (1989), "विधेयन' (1993), "कथापुरुषन' (1995), "निषलुकल' (2002), ओराणुम रण्डु पेण्णुम' (2006), "नालु पेण्णुडगल' (2007) जैसी फिल्मों की सूची अपने आप में अडूर की अद्‌भुत प्रतिभा का प्रमाण है।

"एलिप्पत्तयाम' भारतीय सिनेमा में एक मास्टरपीस कही जा सकती है। इस फिल्म के केन्द्र में उण्णी नाम का एक पुरुष है, जो अपनी पतनशील, सुस्त और परजीवी जीवन शैली के अँधेरे कोने में चूहे की तरह बन्द है। उसकी तीन बहनें है। बड़ी शादीशुदा है और अलग रहती है। दूसरी बहन घर में नौकरानी की तरह रह रही है। तीसरी और सबसे छोटी बहन व्यावहारिक और पाज़िटिव है। फिल्म की शुरूआत में उण्णी ने एक सपना देखा- उसे चूहे ने काटा है। सभी बहनें छानबीन करती है। चूहे का नामोनिशान नहीं । तीसरी बहन घर के जीर्ण वातावरण से भाग जाती है। फिल्म के अन्त में उण्णी कठघरे में फँसा चूहा बन जाता है। इस फिल्म ने मलयालम सिने दर्शकों के सामने आस्वादन का नया क्षितिज खोला। इस फिल्म को ब्रिाटिश फिल्म इंस्टिटयूट का अवार्ड मिला था।

"मुखामुखम' अडूर की चौथी फिल्म है। इसका हर फ्रेम अडूर को एक बड़े भारतीय फिल्मकार के रूप में स्थापित कर देता है।

"मुखामुखम' की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है- श्रीधरन एक समर्पित कम्यूनिस्ट नेता है। एक कस्बे में वह मज़दूरों के हितों की लड़ाई लड़ रहा है। फैक्टरी के मालिक की हत्या हो जाती है। श्रीधरन अपने कुछ कामरेडों के साथ भूमिगत (फरार) हो जाता है। कई साल बीत जाते हैं। लोग मान लेते हैं कि श्रीधरन मर चुका है। लोग उसे देवता बना देने में देर नहीं करते हैं। उसके नाम से इमारतें खड़ी हो जाती हैं। चाय घरों से लेकर पार्टी- दफ्तरों में लोग श्रद्वा और आदर से याद करने लगते हैं। उसका एक जबरदस्त मिथक बन जाता है। श्रीधरन फरार होता है पचास के दशक के मध्य में। 1965 में जब वह अपने कस्बे में वापस आता है, तो दुनिया बदल चुकी है। पार्टी का विभाजन हो चुका है। लोग नहीं चाहते कि मरा हुआ मान लिया गया श्रीधरन भूत की तरह कस्बे की ज़िदगी में वापस आ जाए। उसका मौन, उसका पियक्कड़ रूप, उसके प्रशंसको को मुश्किल में डाल देता है। वे परेशान नज़र आते हैं, घबड़ाये हुए और अपने कामरेड की यह हालत देखकर वे एक गहरे संकोच की स्थिति में भी हैं। फिल्म के मध्यान्तर के बाद पुनःप्रवेश करने वाला श्रीधरन एक भ्रम मात्र होने की सम्भावना है।

अडूर स्वयं नायक को एक ठोस चरित्र के रूप में देखते हैं। पुलिस लाठी चार्ज के बाद पुलिस स्टेशन में श्रीधरन के चेहरे पर बस एक मुस्कान है। श्रीधरन एक भी फ्रेम में उग्र नहीं नज़र आता।

"मुखामुखम' पूरी तरह से सिनेमाई भाषा पर आश्रित फिल्म है। श्रीधरन के एक मित्र की बहन उसके प्रति आकर्षित है और उसे आश्चर्य है कि श्रीधरन की स्त्रियों में दिलचस्पी क्यों नहीं है ? एक प्रसंग में वह श्रीधरन के यहाँ से संक्षिप्त वार्तालाप के बाद कमरे से बाहर जाती है। चाक्षुस संयोजन से ही निर्देशक उस औरत की मानसिकता और श्रीधरन की सच्ची किस्मती विवशता को कई स्तरों पर उद्घाटित कर देता है। उल्लेखनीय है कि अडूर श्रीधरन के भूमिगत जीवन का एक भी प्रसंग पर्दे पर नहीं रखा है। क्या वापस आया श्रीधरन एक भ्रम मात्र है ? दर्शक की प्रतीक्षा है कि यथास्थिति को बनाए रखने के लिए श्रीधरन की आवश्यकता है।

फिल्म "विधेयन' में अडूर ने कहानीकार ज़करिया की कहानी को अपने ढंग से फिल्माया है। फिल्म की कहानी साठ के दशक की है। एक मनोविश्लेषक की तरह अडूर अपने केन्द्रीय पात्रों की भीतरी मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को जाँचते हैं। इसलिए "विधेयन' का नायक एक क्रूर, परपीड़ित और फासिस्ट पात्र होते हुए भी अपनी जटिलता को खोता नहीं है।

नायक ज़मीदार अपनी पत्नी सरोजा की हत्या तो खुद ही करना चाहता है क्योंकि उसकी क्रूरताओं में वह उसका साथ नहीं देती और बराबर टोका - टाकी करती रहती है। लेकिन वह यह भी चाहता है कि सरोजा को अन्तिम क्षणों तक पता न चले कि हत्यारा खुद उसका पति है।

एक बार यह ज़मींदार अपने सेवक तोम्मी को अपनी हत्यारी योजना में शामिल होने के लिए मज़बूर कर देता है। ज़मींदार बाहर बैठा अपनी बन्दूक साफ कर रहा होगा। तोम्मी मालकिन को बुलायेगा। ज़मींदार कुछ इस तरह से गोली चलायेगा कि वह एक दुर्घटना नज़र आये। लेकिन जब सचमुच गोली चलती है, तो

घायल निरीह तोम्मी हो जाता है। कई दिनों बाद घबराया हुआ ज़मींदार आकर अपने सेवक को बताता है कि उसने सरोजा की हत्या कर दी है। लेकिन इस हत्या को आत्महत्या का रूप देने के लिए उसे तोम्मी की सहायता चाहिए। जंमींदार ने कहा कि हत्या के समय मैंने नकाब में अपना चेहरा छिपा रखा था। पर अब उसे यह शक हो रहा है कि अन्तिम समय में उसकी पत्नी ने उसके हाथ पहचान लिये थे। उसने तोम्मी से कहा कि तुम मेरे हाथ छूकर देखो। क्या स्पर्शमात्र से तुम पहचान सकते हो कि यह मेरा हाथ है ? सरोजा के खूंखार भाई ज़मींदार का घर जला देते हैं। वह बदहवास जंगलों में भागने के लिए मजबूर है। तोम्मी को वह अपने साथ ले लेता है। एक जबरदस्त अपराध भावना इस क्रूर जंमीदार को अन्तिम दिनों में बुरी तरह सता रही है। उसके भीतर से, एक मनुष्य पैदा होने की असफल कोशिश कर रहा है। वह पहली बार अपने नौकर को उसके नाम से पुकारता है। अपने को बचाने का साहस भी उसमें नहीं रह गया है। उसके हत्यारे उसे घेर लेते हैं। मृत्यु से पहले अपनी बन्दूक और हाथ उठाकर वह आत्मसमर्पण कर देता है। अन्तिम दृश्य में तोम्मी भाग रहा है। अपनी पत्नी ओमना से मिलने के लिए वह भाग रहा है। अपने क्रूर मालिक के मरने का भी उसे अफसोस हुआ था, लेकिन अब अचानक उससे मुक्ति का अपूर्व आनन्द भी उसे जैसे पता चल गया है।

निर्देशक ने मुख्य रूप से शासक और शासित के सम्बन्धों को अपनी पटकथा में जगह दी है। लेकिन फिल्म की दोनों स्त्रियों - सरोजा और ओमना छोटे - छोटे प्रसंगों में भी अपनी दुनिया को अच्छी तरह से बनाती है। अडूर ने क्रूरता और किसी क्रूर योजना की असफलता से उत्पन्न हास्य की स्थिति, दोनों ही से एक विचित्र प्रकार की दूरी का सम्बन्ध बना रखा है। लेकिन इस प्रक्रिया में एक संपूर्ण सामाजिक स्थिति और मानव सम्बन्धों की अनगिनत तहें पर्दे पर आती हैं। इस फिल्म में नायक के किरदार में मम्मूट्टी ने श्रेष्ठ अभिनय किया है।

अडूर गोपालकृष्णन की फिल्मों की यह विशेषता है कि अपनी फिल्मों में एक माहौल बनाते हैं। प्रकृति उनकी फिल्मों में एक गहरी अपस्थिति है और अपने मुख्य चरित्रों के भीतर तक जाने में उनका विश्वास है। वह जानते है कि मनुष्य का मन एक ऐसबर्ग (हिमशैल) की तरह है। वह ऊपर जितना दीखता है, उससे ज्यादा नीचे है। नीचे का बड़ा हिस्सा बस दिखाई नहीं दे रहा है।

अडूर गोपालकृष्णन की नई फिल्म "नालु पेण्णुंगल' से उन्हें 2007 के सर्वश्रेष्ठ निर्देशक का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। इस फिल्म के कहानीकार तकषी शिवशंकर पिल्लै हैं। "स्वयंवरम', "अनन्तरम', "मुखामुखम', "मतिलुकल' आदि फिल्मों से भी उन्हें निर्देशक का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था। 2005 में दाद साहेब फाल्के पुरस्कार से अडूर गोपालकृष्णन सम्मानित किये गये।

जी. अरविंदन

अरविंदन को अक्सर सिनेमा का कवि-पेंटर कहा जाता है। अरविंदन एक स्वप्रशिक्षित फिल्मकार थे । किसी फिल्म संस्थान में वह नहीं पढ़े थे। अरविंद के लिए यह बात सही है। कवि - पेंटर होने के अलावा वे एक विज़नरी कल्पना की अपनी ही दुनिया में रहनेवाले एक स्वप्नदर्शी फिल्मकार है। वह चित्रकार, कार्टूनिस्ट,

संगीतकार भी थे। बल्कि फिल्म कला को उन्होंने बहुत देर से अपनाया। अच्छी फिल्में देखकर वे फिल्म कला की ओर अचानक आकर्षित हुए।

अरविंदन की पहली फिल्म "उतरायणम" 1974 में बनी थी। "कांचन सीता' (1977) , "थंपु' (1978), "पोक्कु वेयिल' (1982), "चिदंबरम" (1985), "ओरिडतु" (1986), "माराट्टम" (1989), "वानप्रस्थम" "वास्तुहारा" (1993), जैसी फिल्मों में अरविंदन मे फिल्म कला पर अपनी अद्‌भुत पकड़ को साबित किया।

सत्यजित राय और अडूर की फिल्म दृष्टि अधिक सन्तुलित और तगड़ी कही जा सकती है। लेकिन अरविंदन का स्वप्नद्रष्टा स्वभाव उन्हें बिलकुल एक अलग जगह दे देता है। दरअसल प्रारंभ में बनी अरविंदन की सभी फिल्में लीक से हटकर **(offbeat)** रही है। मसलन "उतरायणम" को लें, इस बड़ी दुनिया में छोटे आदमी का परिप्रेक्ष्य इस फिल्म का मूल है। "थंपु" में सर्कस की दुनिया दूर के गांव से जुड़ती है और अलग होती है। "कांचन सीता" में जंगल के निवासी के रूप में राम का और एक अपरोक्ष उपस्थिति के रूप में सीता के किरदार का स्तंभित कर देने वाला दृश्यांकन किया गया है। सीता कभी परदे पर नहीं आती ।"एस्तप्पान" में दर्शक समुद्र से स्टीफन (नायक) को आता हुआ देखता है। अन्त में वह समुद्र की ओर जा रहा है। स्टीफन के होने न होने के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। वह मसीहा है, एक चमत्कारी पुरुष है, एक चोर है, एक धूर्त है। वह सब कुछ होने का भ्रम पैदा कर सकता है। वह संत भी है, कवि भी है। राजन काक्कनाडन ने "एस्तप्पान" की भूमिका की थी।

"पोक्कुवेयिल" (सांझ की बेला) एक संवेदनशील युवक बालू की दुनिया में दर्शक को ले जाती है। यह युवक धीरे - धीरे अपने आस-पास से कटकर विक्षिप्तता के अंधेरे में जा रहा है। मानसिक अस्पताल से शुरू हुई यह फिल्म वहीं खत्म होती है। लेकिन इस बीच बालू का पिता, प्रेमिका, महत्वाकांक्षी खिलाड़ी और एक क्रान्तिकारी से सम्बन्ध और इन सम्बन्धों की एक पूरी भूल- भूलैया परदे पर आती है। बालू के भीतर एक कवि मौजूद है। इस कवि को पहचाना जा सकता है, पर शायद इसका सामना करना, उसे स्वीकार करना, समाज के लिए आसान नहीं है। कवि बालचन्द्रन चुल्लिक्काड ने इस फिल्म के नायक की किरदार की। रहस्यभरी इस फिल्म की पृष्ठभूमि में हरिप्रसाद चौरसिया का संगीत है।

फिल्म "चिदम्बरम' में तीन पात्र है और चौथी चीज़ है प्रकृति। एक सुन्दर दुनिया दर्शकों को जैसे सम्बोधित कर रही है। सुपरिंडेट शंकरन फार्म के छोटे कर्मचारी की पत्नी शिवकामी के प्रति आकर्षित है। अपनी पत्नी के विश्वासघात को मुनियांडी सहन नहीं कर पाता। वह अपनी पत्नी की हत्या कर देता है और स्वयं आत्महत्या कर लेता है। जीवित बचा रह जाता है शंकरन। अपनी अपराध भावना के अँधेरे में चीजों को पहचाने की सिर्फ कोशिश कर सकता है। सी.वी. श्रीरामन की कहानी है "चिदम्बरम'। मूल कहानी में परस्त्रीगमन, हत्या, आत्महत्या सब कुछ हैं। पर फिल्म एक जादुई लोक के आकर्षण के बाद एक वर्जित प्रदेश में प्रवेश के मोह फिर उसकी वजह से पैदा हुई अपराध भावना को जानने -जाँचने की कोशिश करती

है। "चिदंबरम' अरविंदन की सबसे सम्पूर्ण फिल्म लगती है। इस फिल्म के अभिनेता है गोपी, श्रीनिवासन और स्मिता पाटील।

फिल्म "ओरिडतु' एक गाँव में बिजली आने वाली कथा से संबधित है। दुनिया बदल जायेगी पर अरविंदन को पूरा भरोसा नहीं है कि दुनिया बेहतर ही होगी। इस फिल्म के सभी पात्र - ओवरसियर सुरेन्द्रन पिल्लै, नकली डॉक्टर, कामरेड, अध्यापक कार्टून स्ट्रिप जैसे हैं।

"वानप्रस्थम' में अरविंदन ने कथकली की तकनीक पर बहुत नाटकीयता से प्रयोग किया था।

1980 के दशक के समाप्त होते ही कई सुपर स्टार सार्थक सिनेमा की महत्ता को समझने लगे थे। दिग्गज निर्देशकों की फिल्मों में काम करना उनके लिए प्रतिष्ठा की बात बन गयी थी। इसलिए अडूर गोपालकृष्णन ने अपनी दो फिल्मों में "मतिलुकल' और "विधेयन- सुपर स्टार मम्मूट्टी को अनुबन्धित किया, तब मलयालम फिल्म के दूसरे सुपर स्टार मोहनलाल को अरविंदन की फिल्म "वानप्रस्थम' में काम करना ही पड़ा।

"वास्तुहारा' अरविंदन की आखिरी फिल्म है और इसमें मास्टरपीस होने के सारे गुण मौजूद हैं। इसमें उन्होंने एक नये सिनेमाई आत्मविश्वास का परिचय दिया है। विस्थापित मानसिकता की भीतरी गहराइयों का पूरा ध्यान रखते हुए उन्होंने बाहरी सच्चाई से भी जैसे पूरी मुठभेड़ की कोशिश की है। "वास्तुहारा' में विभाजन और बंगलादेश के मुक्ति संग्राम के विस्थापितों के न्यूज रील फूटेज का भी इस्तेमाल किया गाया है। फिल्म का बहुत बड़ा हिस्सा शरणार्थियों की समस्याओं से जूझ रहे एक रिफ्यूजी जुनियर अफसर के संसार को समर्पित है। फिल्म के केन्द्र में एक ऐसी बंगला महिला है जिसने एक मलयाली से शादी की थी, पर पति की मृत्यु के बाद उसने अपने जीवन की लड़ाई खुद लड़ी। उसके बच्चे नक्सलवाद से आकर्षित हुए। लड़की जेल से पैरोल पर आई हुई है। लेकिन बाहरी दुनिया की इन कटु सच्चाइयों के बीच अचानक प्रकृति एक बड़ी राहत का काम करती है।

भारत-अमेरिका के सहयोग से बनी अरविंदन की फिल्म "उन्नी" व्यवसायिक रूप से कभी भी कहीं नहीं दिखाई गयी। दूरदर्शन ने श्रद्धांजलि के तौर पर उनकी मृत्यु के बाद छोटे परदे पर दिखाया था।

शाजी.एन.करुण

मलयालम की एक कालजयी फिल्म है "पिरवी' (1988)। इस फिल्म का निर्देशक शाजी.एन.करुण पहले अरविंदन के कैमरेमैन थे। "पिरवी' की मुख्य कथा आपातकाल के दिनों के एक कुख्यात "राजन हत्याकांड केस' के इर्दगिर्द रहती है। एक बूढ़ा पिता अपने बेटे को खोज रहा है। उसे जब अपने बेटे की गिरफ्तारी के बारे में पता चलता है, तो वह शहर जाकर जगह- जगह भटकता है। शाजी अकेलापन, विषाद और पीड़ा के संसार के आनेखे सिनेमाई चितेरे हैं। शाजी ने इस फिल्म के ज़रिये अन्तरराष्ट्रीय खयाति अर्जित की है। पिरवी ने राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय 31 पुरस्कार हासिल किये थे। शाजी की अन्य फिल्में हैं "स्वं' (1994),"वानप्रस्थम्' (1999) और "कुट्टिस्त्रांक" (2009)। "स्वं' में भी पिता-पुत्र सम्बन्धों का चित्रण है। "वानप्रस्थम्" कथ्य व शिल्प हर दृष्टि से एक बेजोड़ फिल्म है। इसमें अपने पिता की पहचान से वंचित ऐसे कथकली नर्तक की कहानी है जिसे अपने पैतृक अधिकारों से भी वंचित रहना पड़ा। छोटी जाति में जन्मे कथकली नर्तक कुञ्ञीक्कुट्टन को चाहकर भी पता नहीं चलता कि उसका पिता कौन है। उसकी यह व्यथा उसके नृत्य में व्यक्त होती है। शादी से उसकी परेशानियाँ बढ़ती है। बेटे का जन्म भी उसका घाव नहीं भर पाता। एक दिन जमींदार की भतीजी सुभद्रा कुञ्ञीक्कुट्टन को मंच पर अर्जुन के रूप में देखकर मोहित हो जाती है। दोनों यथार्थ और कल्पना में भेद नही कर पाते। कुञ्ञीक्कुट्टन को महाभारत का अर्जुन समझकर सुभद्रा उसके प्रेम में बँध जाती है। सुभद्रा कुञ्ञीक्कुट्टन के पुत्र को जन्म देती है लेकिन उसे दिखाने से इनकार कर देती है। कुञ्ञीक्कुट्टन टूट जाता है। पहले वह अपने पिता से वंचित रहा और अब पुत्र से। कुञ्ञीक्कुट्टन सुभद्रा के नाम एक पत्र छोड़ जाता है कि वह पुत्र को उसके पिता के बारे में ज़रूर बताये ताकि जो पीड़ा उसने सही, उसके पुत्र को न सहनी पड़े। "वानप्रस्थम' में शाजी ने जाति-व्यवस्था व कलाकारों की ज़िन्दगी का मर्मिक चित्रण किया है। शाजी की अन्य फिल्में है- "स्वं' (1994) और "वानप्रस्थम" (1999)। दोनों फिल्मों में संगीत की मुख्य भूमिका है। शाजी की "कुट्टिस्त्रांक को 2009 की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। शाजी की नई फिल्म है ""ओल"" (2018)